आधुनिक हिंदी नाटकों की रंगचेतना और रंगमंच

मनोज कांबले

सहायक प्रोफेसर, लाल बहादुर शास्त्री शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलुरू।

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18771636

ABSTRACT:

हिंदी नाटकों और रंगमंच का संबंध पुरातन काल से ही अत्यंत घनिष्ठ रहा है, जो संस्कृत और लोक नाट्य परंपराओं से विकसित होकर आधुनिक काल तक पहुँचा है। पारसी रंगमंच के व्यावसायिक दौर के बाद, भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद ने हिंदी रंगमंच को साहित्यिक और कलात्मक आधार प्रदान किया। स्वतंत्रता के पश्चात, विशेषकर 1950 के बाद, हिंदी नाटकों में युगान्तकारी परिवर्तन आए। मोहन राकेश, धर्मवीर भारती और सुरेंद्र वर्मा जैसे नाटककारों ने पाश्चात्य नाट्य शैलियों (जैसे इब्सन और एब्सर्ड थियेटर) और भारतीय परंपराओं का समन्वय करते हुए 'आधे-अधूरे' और 'अंधा युग' जैसी कालजयी रचनाएँ दीं। आधुनिक रंगचेतना में नाटक केवल पाठ्य वस्तु न रहकर, रंगमंच की तकनीकी आवश्यकताओं, प्रकाश व्यवस्था और अभिनय के अनुरूप सृजित किए जाने लगे हैं, जिससे नाटककार और रंगकर्मी के बीच का संबंध और अधिक गहरा हुआ है।

KEYWORDS:

आधुनिक हिंदी रंगमंच, नाट्य शिल्प, रंगचेतना, पाश्चात्य प्रभाव, प्रयोगधर्मिता.

नाटक और रंगमंच का संबंध पुरातन काल से चला आ रहा है। नाट्य परम्परा से संस्कृत नाट्य तथा लोकनाटकों से पारसी नाटकों व रंगमंच के दौर की समृद्ध परम्परा का काल-क्रम देखा जा सकता है। इस निरंतर प्रवाह में नाटक और रंगमंच का रूप बदलता गया किंतु उसमें छिपी अभिव्यक्ति, संवेदना, संप्रेषण का भाव समान रूप से विद्यमान है। हिंदी नाटकों ने उन्नीसवीं शती तक अपना एक निश्चित रूप प्राप्त कर लिया था। पारसी रंगमंच के पतन ने साहित्यिक रंगमंच को स्थापित होने हेतु आधार भूमि प्रदान की। डॉ. सावित्री स्वरूप जी के विचारानुसार "भारतेन्दु और उनके साथियों ने इस पारसी रंगमंच से विरक्त होकर इनकी प्रतिक्रिया में साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की। हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उपयोग हुआ। हिंदी रंगमंच व नाटक का उद्देश्य मनोरंजन

से एक कदम आगे बढ़कर उद्देश्य और शिक्षा देना, प्रश्न उठाना, वर्तमान परिस्थितियों को विवेकपूर्ण मनःस्थिति से समझना भी था।'' साहित्यिक रंगमंच में खेले जाने वाले नाटकों में देशप्रेम, संस्कृति आदि की ओर अधिक ध्यान रखा जाता था और अधिकतर पौराणिक नाटक ही इस रंगमंच में अभिनीत होते थे। आधुनिक युग का आरंभ नाटक की विधा से ही आरंभ होता है। आधुनिक हिंदी नाटक 'नहुष' गिरिधर गोपाल द्वारा रचित पहला हिंदी नाटक माना गया तो कुछ रीवा के महाराजा विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा रचित नाटक 'आनंद रघुनन्दन' को हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। आधुनिक काल आगमन के साथ ही हिन्दी नाटकों में साहित्यिक चेतना का उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी भाषा साहित्य, नाटकों व अन्य विधाओं को परिष्कृत रूप प्रदान किया। उन्होंने रंगमंच को भी नया रूप व आयाम प्रदान किया। नवीन व पुरातन रंग परम्पराओं का मिला-जुला रूप आधुनिक नाटकों व रंगमंच की पहचान बने। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में उनकी रचनात्मक सोच सराहनीय रही। रंगमंच की दृष्टि से नाटकों में रंगमंचीयता का अभाव दिखाई देता है किन्तु उसकी कलात्मकता का रूप रंगमंच पर साकार किया जा सकता है। पृथ्वी थियेटर और इंडियन पीपुल थियेटर (इप्टा) - पृथ्वी थियेटर शुद्ध व्यावसायिक रंगमंच था। रंगशाला, अभिनय की कला, आदर्श आदि पृथ्वी थियेटर की पहचान रही। इप्टा का रूप राजनीतिक था। इप्टा थियेटर ने राजनीति के दायरे में रहकर ही रंगमंच की सेवा की। नया रंगमंच अपनी नई पहचान दर्शकों में बनाने का प्रयास कर रहा था। यह दोनों रंगमंच अपनी तरह से आधुनिक रंगमंच को समृद्ध कर रहे थे। हिंदी नाटकों व रंगमंच पर पाश्चात्य प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों पर इब्सन और शॉ का प्रभाव देखा जा सकता है। विख्यात नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद ने अपने एक निबन्ध में विचार व्यक्त किए हैं – "रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जायें, परन्तु यह होना चाहिए नाटक के लिए रंगमंच हो।''

आधुनिक रंग परम्परा में पुरातनता और नवीनता का समन्वय स्थापित करने का भरसक प्रयास किया गया। भारतेन्दुकालीन व प्रसाद युग के नाटककारों ने भरत रंग परम्परा, लोक रंगमंच व पारसी रंगमंच का प्रभाव ग्रहण किया वहीं उन पर पाश्चात्य प्रभाव भी देखा जा सकता है। हिंदी नाट्य व रंगमंच पर पाश्चात्य रंग परम्परा का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। समकालीन नाटककारों व रंगकर्मियों की कृतियों में यह नयापन विषय, शैली, रंगमंच, तकनीकी रंग-तत्वों सभी पर दिखाई

दिया। विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण मिश्र, धर्मवीर भारती, उदयशंकर भट्ट आदि आधुनिक नाटककारों पर मार्क्स, फ्रायड, इब्सन आदि के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह परिवर्तन का युग था और रंगमंच आधुनिक हिंदी रंगमंच इस परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। प्रसिद्ध रंगकर्मी देवेन्द्र राज अंकुर जी के शब्दों में "आजादी के बाद से लेकर आज तक आधुनिक भारतीय रंगमंच के तीन मुख्य पड़ाव माने जा सकते हैं जो बीस-बीस बरस के अन्तराल में फैले हुए हैं। इनमें पहले पड़ाव का समय 1950 से 1970 तक, दूसरे पड़ाव का समय 1970 से 1990 तक और तीसरा पड़ाव 1990 से 2010 तक और चाहें तो आज तक रखा जा सकता है।"

देशकाल-वातावरण, परिस्थितियाँ प्रत्येक युग में नया परिवर्तन लेकर आती हैं। हिंदी रंगमंच भी नए-नए प्रयोग द्वारा समाज के जन को मनोरंजित कर रहा है। आधुनिक हिंदी नाटककारों में मोहन राकेश का महत्त्व सर्वोपरि है क्योंकि उन्होंने नाट्य साहित्य को जो आधुनिक संवेदना और रंग शिल्प प्रदान की आगे चलकर वह अन्य नाटककारों के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। मोहन राकेश ने अपने नाटकों द्वारा नवीन रंगचेतना, भावभूमि व शिल्प प्रदान किया। 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन' आदि नाटकों में कथ्य की विविधता होते हुए भी भाव, रंग व शिल्प का आधुनिक रूप ही दिखाई देता है। मोहन राकेश का प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' में पुरुष एक, दो, तीन.. की जिस रंग युक्ति का प्रयोग हुआ वह नामहीन पात्रों के रूप में विकसित हुई है और इसी प्रभाव को ग्रहण करके समकालीन नाटककारों ने अपने नाटकों में अनेक प्रयोग किए। मणिमधुकर ने अपने नाटक 'रसगंधर्व' में अ, ब, स, द, ह तथा 'बुलबुल सराय' में क, ख, ई पात्रों की सृष्टि की है। उन्होंने अनेक रंग युक्तियों का सृजन किया तथा अपने परवर्ती नाटककारों को प्रभावित करते रहे। धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' की रचना करके नई संभावनाओं को जीवित किया। मिथकीय प्रयोग धर्मवीर भारती जी से पहले हो चुके थे किंतु 'अंधायुग' में मिथक की व्याख्या तथा नाटक में उत्कृष्ट कविता के प्रयोग करके धर्मवीर भारती जी ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया। सुरेन्द्र वर्मा का नाटक 'द्रौपदी' और 'आठवाँ सर्ग', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' आदि नाटकों में सुरेन्द्र वर्मा ने नई नाट्य प्रवृतियों को जन्म दिया। लक्ष्मी नारायण लाल ने अपनी नाट्य-कृतियों में भिन्न-भिन्न नाट्य-प्रवृत्तियों का आत्मसात किया जैसे उन्होंने विसंगत नाटक, व्यक्तिवादी, लोक नाट्य शैली के अनुरूप नाट्य रचना की 'मिस्टर अभिमन्यु', 'रातरानी', 'दर्पण', 'मादा कैक्टस' और

'कर्फ्यू', 'व्यक्तिगत' आदि उनके चर्चित नाटक हैं। नाटक और रंगमंचीयता की विविध प्रवृत्तियों को लेकर शंकर शेष ने अनेक नाटकों की रचना की है। मिथक या पौराणिक आख्यानों को लेकर नयी प्रयोगधर्मिता के साथ समकालीन संदर्भों में उन्होंने अपने विषयों को प्रकट किया है। 'एक और द्रोणाचार्य', 'मायावी सरोवर' उल्लेखनीय नाटक हैं। नाटककार ने अछूते कथानकों को उभारा, रंगकर्म की दृष्टि से नाटककारों में परिष्कार हुआ। आधुनिक हिंदी नाटक रंगमंच की दृष्टि से लिखे जाने लगे। नाटककार उन्हें लिखते समय रंगमंच की पृष्ठभूमि व नाटक की रंगमंचीयता को समझकर ही पात्रों के चरित्र चित्रण, देशकाल-वातावरण व रंग संकेतों को नाटक निर्देश के रूप में प्रस्तुत करने लगे। भीष्म साहनी के हिंदी नाटक, नाट्य-साहित्य में अपने तीन महत्वपूर्ण नाटकों द्वारा पहचान बनाई 'हानूश', 'कबीरा खड़ा बाजार में' तथा 'माधवी' उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'हानूश' नाटक का कथ्य और शिल्प अपने-आप अतुलनीय है। नाटक की कथावस्तु समाज को अपनी मर्जी से चलानेवाली शोषणकारी और दमनकारी शक्तियों की कार्य-पद्धति का वर्णन किया गया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'बकरी' नाटक में लोक नाट्य तत्वों का उपयोग करके कथ्य में नयापन पैदा किया। उनके नाटकों में रंगमंच के आधार पर कथ्य-शिल्प की व्यवस्था को देखा जा सकता है। 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ', 'कल भात आयेगा' आदि उल्लेखनीय नाटकों में नाटककार ने वस्तु और शिल्प में नयापन प्रस्तुत किया है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शतुर्मुर्ग' राजनीतिक विषय-वस्तु, तीखे व्यंग्य को समाहित किए हुए है और रंगमंचीय दृष्टि से लोकप्रिय व चर्चित नाटक है। रमेश बक्षी ने स्त्री-पुरुष के संबंधों को आधार बनाकर 'देवयानी का कहना है', 'तीसरा हाथी' तथा 'वामाचार' जैसे प्रसिद्ध नाटक लिखे। मुद्राराक्षस अपनी प्रयोगधर्मिता और बहुमुखी लेखन के कारण प्रसिद्ध हैं। 'खोये हुए आदमी की खोज', 'मरजीवा', 'तेंदुआ', 'योर्स फेथफुली तिलचट्टा' आदि उनके उल्लेखनीय नाटक हैं। आधुनिक हिंदी नाटककारों में लाने के लिए किसी बाहरी क्रान्ति की जरूरत नहीं है, न ही समझी उन्होंने रंगमंच और दूसरे कला माध्यमों के साथ साक्षात्कार की प्रक्रिया में यह बदलाव आदमी के भीतर स्वयं आ जाता है। यही प्रक्रिया नाटक व रंगमंच को प्रासंगिक बनाती है। बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भों में नाटक और रंगमंच की प्रासंगिकता को बनाए रखने के लिए आधुनिक हिंदी नाटककारों ने अपने नाटकों को एक स्तर देने का प्रयास किया। अपनी सीमाओं को बंधनों से मुक्त करने का प्रयास किया। पिछले पचास वर्षों से हिन्दी नाटक और रंगमंच में कथ्य का लगातार विस्तार हो रहा है। इसमें जीवन का पक्ष अछूता नहीं रहा।

दूसरी ओर नवीन शिल्प और शैलियों का विकास बहुत ही प्रयोगात्मक रहा और परिणामस्वरूप हिंदी रंगमंच अखिल भारतीय स्तर पर अपने आपको प्रस्तुत कर सका। पिछले पचास वर्षों में हिन्दी नाटककारों के पास कथावस्तु या विषय का अभाव नहीं रहा। रंगमंच का प्रसार-प्रचार सभी भाषाओं के नाटककार व रंगकर्मी अपने-अपने स्तर पर कर रहे थे। उनकी रचनात्मक दृष्टि, सोच नाटक व रंग शिल्प और रंगमंचीय संभावनाओं के द्वारा परिलक्षित होती ही रही। देवेन्द्र राज अंकुर जी के शब्दों में "कभी नाटककार अपनी कथावस्तु के लिए अतीत में गया है, कभी वर्तमान में और यहाँ तक कि कभी-कभी भविष्य में भी। कभी इतिहास, पुराण कभी पुराण, कभी मिथक, कभी लोक-कथा, कभी कल्पना और कभी यथार्थ- तात्पर्य यह है कि सामग्री के चयन के लिए उसने शायद ही किसी स्रोत को छोड़ा हो।"

महेंद्र मोरे का नाटक 'जानेमन' और नन्द किशोर आचार्य के नए नाटक 'जिल्ले सुब्हानी' का कथ्य, शिल्प व रंगमंचीय संभावनाओं से दर्शकों के दिलों में अपनी जगह बना सका। बी०एम० शाह का प्रसिद्ध नाटक 'त्रिशंकु' हिन्दी नाटकों व नाटककारों के लिए प्रेरणा-रूप रहा। वह हिंदी नाटककार के साथ कल्पनाशील निर्देशक व संवेदनशील अभिनेता व रंगकर्मी भी थे। आधुनिक हिंदी नाटककारों के नाटकों में रंगमंचीयता का प्रभाव समय के साथ विकसित हुआ। भारतेंदु, प्रसाद, लक्ष्मीनारायण लाल आदि के समकालीन नाटककारों में अतीत के नाट्य शिल्प व रंगकर्म के प्रति लगाव देखा जा सकता है। परिवर्तन के दौर में समय की गति के साथ हिंदी नाटकों व नाटककारों की सोच, विचार, दृष्टिकोण, शिल्प, रंग सभी में प्रभाव ग्रहण व मौलिकता दिखाई देती है। सभी नाट्य शैलियों के मिले जुले रूप को अपनाकर नाट्य लेखन किया तथा हिंदी नाटक साहित्य व रंग परंपरा को पुनः जीवित करके उसमें प्राण फूंके हैं, तो दूसरी ओर उन्होंने पाश्चात्य नाट्य शैली और रंगतत्वों को भी आत्मसात कर हिंदी नाट्य-लेखन को पुष्ट किया है। अब विषय प्रधान नहीं रह गया था अर्थात् नाट्य लेखन व उसकी तकनीकी व रंगमंचीय संभावनाओं के आधार पर ही रंगमंच पर उसकी प्रस्तुति की कल्पना की जाती थी। नाट्य लेखन व प्रस्तुतीकरण में अनेक परिवर्तन हो रहे थे, नाटक को चौखटे वाले रंगमंच से बाहर लाकर जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा था।

निष्कर्ष

भारतीय नाट्य परम्परा का रूप जितना प्राचीन है उतनी प्राचीन

उसकी रंग परम्परा भी है। भरत मुनि से पूर्व भी रंगमंच का विधान था और उसके बाद भी। भरत मुनि ने रंगपरंपरा को पल्लवित पुष्पित किया। भरत मुनि ने रंगशालाओं व उसके व्यवस्थित विधान को नाटकों के अनुसार प्रयोग किया। लोक रंगमंच का रूप भी समय काल के अनुसार बदलता रहा है। मिट्टी से जुड़े होने के कारण इनका रूप भौगोलिक स्थिति के अनुसार बदलता रहा। संस्कृत रंगपरंपरा का इतिहास बहुत ही समृद्ध रहा है कालिदास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त आदि महान संस्कृत आचार्यों ने रंगपरंपरा को जीवित रखा। आधुनिक हिंदी रंगमंच का रूप 19 वीं शताब्दी में नई रंगचेतना लेकर आया, नए-नए विषयों पर नाटक लिखे गए और रंगमंच की दिशा में भी बहुत बदलाव हुआ। आधुनिक नाटककारों की सोच और दृष्टिकोण में भी नयापन और मौलिकता का रूप देखा गया। रंगमंच पर प्रयोगात्मक रूप में प्रस्तुतीकरण किए गये जो रंगमंच और प्रेक्षक को जोड़ने में भी सफल रहे।

हिंदी नाटक निरंतर अपनी दिशा तय करता हुआ नवीन प्रभावों को ग्रहण करता रहा है। नाटककार रंगमंच का बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटक है। नाटककार की रचना, लिपिबद्ध होकर काल के प्रवाह में अपनी पहचान को बनाए रखती है। हिन्दी नाटककारों ने मौलिक दृष्टिकोण के द्वारा आधुनिक नाटकों का सृजन किया, इसकी शुरुआत भारतेन्दु से मानी जाती है। प्रसाद युग तक आते-आते नाटकों में रंगमंचीय विधान पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। नाटक मूलतः रंगमंच के लिए होता है, यह कभी भी नाटककार को भूलना नहीं चाहिए। आधुनिक हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में नाटक व रंगमंच का रूप निरंतर बदलता रहा। पचास के दशक के नाटककारों ने प्रचलित नाट्य रूढ़ियों व ढाँचे को तोड़कर स्वच्छंद नाट्य लेखन पर बल दिया तो दूसरी ओर उन्होंने पारंपरिक नाट्य संस्कारों को भी आत्मसात किया। भारतेन्दु व प्रसाद के नाटकों से प्रभाव ग्रहण करती हुई यह स्वच्छंदता व नवीनता आधुनिक हिंदी नाटक में जगदीशचंद्र माथुर व धर्मवीर भारती जैसे नाटककारों में दिखाई देती है। इन्होंने नाटककार के रूप में आधुनिक प्रभावों को ग्रहण किया, वहीं उन्होंने पारंपरिक संस्कारों को भी जीवित रखा। आगे चलकर लक्ष्मीनारायण लाल जैसे नाटककारों ने इस दिशा में अपना विशेष योगदान दिया, इन नाटककारों ने नाटक के कथ्य, शिल्प व रंग में जहाँ आधुनिकता का समावेश किया वहीं उनके लिए पारंपरिक नाट्य संस्कारों का धरातल तैयार किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी नाटक व रंगमंच में अनेक उत्साहवर्द्धक

विस्तार, रंग चेतना में नवीनता तथा बदलते भावबोध के कारण जिन नाटकों का निर्माण हो रहा था, उनमें व्यक्ति नाटक की परिधि में आ गया था और नाटककार व्यक्ति संशय, घुटन, आडंबर, अनैतिकता आदि मनोवैज्ञानिक आयामों को उल्लेखित कर रहा था। आगे चलकर नाटकों में अस्तित्वादी चिंतन और विसंगति बोध का प्राधान्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव भी हिंदी नाट्य पर दिखाई देने लगा। एब्सर्ड नाट्य परंपरा व विसंगत नाटकों का चलन भी हिंदी नाटकों में दिखाई देने लगा क्योंकि सत्तर के दशक के बाद नाटककारों ने परिवेश की भयावहता और भ्रष्ट आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था को अपना नाट्य-विषय बनाया। और उस समय के नाटक व नाटककारों पर पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य परंपरा का सहज प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन हिंदी नाटककारों ने जहाँ पाश्चात्य प्रभावों को ग्रहण किया वहीं अपने पारंपरिक नाट्य संस्कारों व रंग परंपराओं को जीवित रखा। आधुनिक हिंदी नाटककारों ने नाट्य साहित्य को नवीन दिशा दी लेकिन रंगमंचीय दृष्टिकोण को भी नाटक का आधार बनाया। रंग स्थिति को दृष्टि में रखकर नाटकों की रचना की और हिंदी रंग परंपरा को पुष्ट किया। मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती, डा० लक्ष्मी नारायण लाल, शंकर शेष, भीष्म साहनी, मणि मधुकर, असगर वजाहत, मीराकांत आदि नाटककारों पर अपने समकालीन हिंदी नाट्य व नाटककारों का सहज प्रभाव पड़ा, वहीं आधुनिक हिंदी नाटक के समांतर प्रादेशिक भाषाओं के नाटक भी प्रचलित हो रहे थे।

संदर्भ सूची

1. डॉ. सावित्री स्वरूप - नव्य हिन्दी नाटक, पृष्ठ संख्या 296
2. जयशंकर प्रसाद - काल और कला संबंध, पृष्ठ 10 प्रथम संस्करण
3. देवेन्द्रराज अंकुर - पढ़ते सुनते देखते, पृष्ठ संख्या – 150
4. महेश आनन्द, देवेन्द्रराज अंकुर - रंगमंच के सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या - 290
5. डॉ. लक्ष्मी नारायणलाल - आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच, पृष्ठ संख्या – 41
6. डॉ. सुषमा बेदी - हिन्दी नाट्य प्रयोग के सन्दर्भ में, पृष्ठ संख्या - 31
7. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिंदी नाटकों की प्रयोगधर्मिता, पृष्ठ संख्या -33
8. जयदेव तनेजा - नयी रंग चेतना और हिंदी नाटककार, पृष्ठ संख्या - 12